मुगलकाल में शिक्षा का स्वरूप

प्रीति सिंह

किसी भी समाज की तस्वीर बदलने में शिक्षा का योगदान महत्वपूर्ण होता है। किसी भी देश के इतिहास का वर्णन करने के लिये उस देश की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सभी दृष्टिकोण का अवलोकन करना अत्यंत आवश्यक होता है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए मध्यकालीन भारत की विभिन्न परिस्थितियों को इस शोध में उल्लेख करने हेतु गहन रूप से अध्ययन किया गया है, ताकि तथ्यों की विश्वसनीयता बनाये रखते हुए शोधकार्य पूर्ण किया जा सके। मध्यकालीन भारत अत्यधिक उथल–पुथल, शासनकाल में परिवर्तन, प्रजा का पतन तथा अनेक कठिनाईयों से जूझ रहा था।

मुसलमानों के आगमन और मुगल राज्य की स्थापना के साथ ही शिक्षा के उद्देश्य और व्यवस्थाओं में परिवर्तन आया था। उनके आगमन के पूर्व भारत में एक आदर्श तथा समृद्ध शिक्षा प्रचलित थी। सल्तनत युग में मुसलमान शासकों ने धार्मिक विद्वेष के कारण भारतीय शिक्षा पर जबर्दस्त प्रहार किए। इन प्रहारों से न केवल हमारी शिक्षा को वरन संस्कृति को भी आघात लगा, किन्तु शिक्षा और मजबूत थी कि ये प्रहार उन्हें नष्ट नहीं कर सके। मुस्लिम युगीन भारत में लौकिक, आध्यात्मिक, व्यावसायिक और सैनिक सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी, जिससे छात्रों का मानसिक, बौद्धिक और भौतिक स्तर उन्नत हो सके। इस प्रकार बालकों का चहुंमुखी विकास करना शिक्षा का अन्य उद्देश्य था। विभिन्न विषयों का ज्ञान कराने के साथ अनुशासन, मानवता, नैतिकता, शिष्टाचार, सदाचार आदि चारित्रिक गुणों के विकास की और भी पूरा–पूरा ध्यान दिया जाता था। दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व तथा चरित्र का निर्माण करना शिक्षा का एक अन्य ध्येय था।

जीवन का निर्माण करना तत्कालीन शिक्षा का प्रमुख आधार था जिससे बालक समाज तथा देश का एक उपयोगी अंग बन सके। अध्ययनाधीन काल में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मा का शोधन करना भी रहा था। शासक और शासित दोनों ही बिना किसी धार्मिक और जातीय भेदभाव भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करते थे। पाठ्यक्रम में हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों वर्गों के राष्ट्रीय साहित्य का समावेश था। शिक्षा देने की दृष्टि से अमीर और निर्धन छात्रों में भेदभाव नहीं था। प्रशासनिक कला का ज्ञान सभी को प्रदान किया जाता था और कोई भी व्यक्ति अपनी योग्यता तथा प्रतिभा से बादशाह के अधीन उच्चतम पद प्राप्त कर सकता था। यह तथ्य इस बात की प्रतीक है कि शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र निर्माण भी था। अकबर प्रथम मुगल बादशाह था जिसने भारत में हिन्दू और मुस्लिम प्रजाजनों में सामंजस्य स्थापित करने हेतु प्रत्येक स्तर पर शिक्षा प्रणाली को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया था।

शिक्षा का एक उद्देश्य इस्लाम के अनुयायियों में ज्ञान का आलोक फैलाना था। मुहम्मद साहब ने कहा है

✶ शोधार्थी, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

कि प्रत्येक मुसलमान को ज्ञान प्राप्त करना चाहिए क्योंकि ज्ञान अमृत के समान हैं। उन्होंने इस्लाम के बन्दों को कर्तव्य और अकर्त्तव्य एवं धर्म तथा अधर्म का भेद जानने के लिए ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा दी। शेख अब्दुल हक, जिसने कई ग्रन्थों की रचना की थी और जो अकबर तथा जहांगीर का समकालीन था, ने अपनी पुस्तक "अखबरूल अखयार" में छात्रों के मध्य होने वाले वार्तालाप का उल्लेख किया है, जिससे तत्कालीन शिक्षा के उद्देश्यों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वार्तालाप के समय सभी छात्र एक दूसरे से शिक्षा ग्रहण करने का उद्देश्य पूछ रहे थे। कुछ छात्रों ने बहाना बनाते हुए और गंभीरता न दिखाते हुए कहा कि अध्ययन करने के पीछे उनका मकसद दैविक और आध्यात्मिक शक्ति को समझने की सूझ पैदा करना मात्र है। जबकि अन्य छात्रों ने स्पष्ट रूप से निडरतापूर्वक कहा कि उनके अध्ययन का उद्देश्य भविष्य में सांसारिक परिलाभ प्राप्त करना है। जब छात्रों ने मुझसे पूछा तो मैंने कहा कि निरन्तर अध्ययन करने का मेरा ध्येय महान विद्वानों के विचारों का ज्ञान प्राप्त करने के साथ भूतकालीन संज्ञान की जानकारी करना है। इसके अतिरिक्त महान विद्वानों के द्वारा बतलाई उन विधियों की जानकारी करना है, जिनसे उन्होंने अपने अंतर्ज्ञान से जीवन के वास्तविक सत्य को समझा और बौद्धिक समस्याओं को हल किया।

शिक्षा का स्वरूप एवं संगठन : मुहम्मद साहब ने कहा है कि मेरे सभी आज्ञाकारी पुरुषों एवं नारियों के लिए ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है। इस्लाम धर्म ने सदैव ही कुरान, हदीस और ज्ञान–विज्ञान के गहन अध्ययन तथा शिक्षा प्रसार पर बल दिया है। कुरान के अंश "सुरा–इ–इकरा" में मुहम्मद सहब ने बताया है कि कलम, स्याही एवं कागज ये तीन उपकरण समग्र रूप से शिक्षा की प्राप्ति एवं ज्ञान के प्रसार हेतु मूल्यवान हैं। शिक्षा प्राप्ति एवं विभिन्न विषयों का ज्ञान इस्लाम में धार्मिक कर्त्तव्य के रूप में अपनाया गया है। इस्लाम धर्म की यह मान्यता रही है कि ज्ञान ही मनुष्य का सर्वोत्तम आभूषण है और दावात की स्याही माँ के रक्त से भी अधिक पवित्र है।

मुस्लिम शिक्षा ने संसार के बौद्धिक उत्थान और मानवीय मूल्यों के प्रसार में उल्लेखनीय योगदान दिया। मुस्लिम शिक्षा के संदर्भ में "इबन्खलादुन" 'इब्न अल–अतहत' आदि इतिहासकारों के विवरण से प्रकट होता है कि मध्यकाल में मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति अपने विकास की चरम सीमा पर थी। मध्यकाल में भारतीय मुस्लिम वर्ग ने शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में बहुत कुछ किया था। उस युग में बहुत से लोग शिक्षा एवं साहित्य के संपोशक और संरक्षक थे। कुछ विद्वानों ने अपना सम्पूर्ण जीवन शिक्षा प्रसार के लिए समर्पित कर दिया था। ऐसे लोगों ने अवैवाहिक जीवन जिया क्योंकि विवाह उनकी दृष्टि में शैक्षिक उन्नति में बाधक तत्व था। मुस्लिम विद्वानों की शिक्षा के प्रति इस तरह की वृत्ति निश्चय ही मानीय है। हजरत शेख इसा देहलवी ने मृत्यु से पूर्व अपनी इच्छा प्रकट करते समय कहा कि उन्हें उस स्थल पर दफनाया जाय जहाँ छात्र मदरसे में जाने से पहले अपने जूते उतार कर रखते हैं। राज्य भी विद्वानों को प्रशासनिक सेवा में लेकर प्रोत्साहित करता था। नियुक्ति के पूर्व उच्च कोटि के विद्वानों का एक दल योग्य, होनहार, मेधावी तथा उपयुक्त पात्र का चयन करता था तथा औपचारिक चयन प्रक्रिया पूर्ण कर चयनित छात्रों के सिर पर पगड़ी बांध कर उनको विशेष

दर्जा दिया जाता था। सारांश में मध्यकाल में शिक्षा को बहुत ही उच्च्च स्थान प्राप्त था और साथ ही सारे मुल्क में विद्वान सभी के प्रिय थे तथा अतिशय सम्मान प्राप्त करते थे।

मुगलकाल में प्रजा के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का कर्त्तव्य नहीं था। राज्य के प्रशासन में शिक्षा का कोई पृथक विभाग नहीं था और समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में शिक्षा के प्रसार एवं व्यवस्था के लिए किसी विश्वविद्यालय का उल्लेख भी नहीं मिलता है, किन्तु इससे यह निष्कर्ष उचित नहीं होगा कि मुगल सम्राट शिक्षा में रूचि नहीं लेते थे और उन्हें ज्ञान–विज्ञान से कोई लगाव नहीं था। वास्तविकता यह है कि सभी महान मुगल बादशाह न केवल स्वयं शिक्षित थे वरन् शिक्षा को प्रोत्साहन देना अपना कर्त्तव्य भी समझते थे। उस समय शिक्षा की व्यवस्था करना निजी कार्य या और राज्य का इससे कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। शिक्षा समाज के सुसंस्कृत विद्वानों और धर्म गुरुओं के कन्धों पर थी और प्रायः ये लोग ही शिक्षा की व्यवस्था प्रचार, प्रसार एवं देखभाल करते थे। फिर भी मुगल बादशाह कई साधनों और राजकीय अनुदानों से शिक्षा प्रसार को प्रोत्साहन देते थे। सम्राट विद्वानों मौलवियों, मुल्लाओं, संतों और शेखों को जो शिक्षा प्रसार का कार्य करते थे, उदारतापूर्वक सहयोग करने के साथ ही शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों को छात्रवृत्ति के रूप में धनराशि भी प्रदान करते थे। जन–शिक्षा सरकार का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व नहीं था, वह तो मस्जिद को अनुदान दिया करती थी। मस्जिदें शिक्षा वितरण का केन्द्र बन जाती थी। सरकार के आधुनिक कर्त्तव्यों के अनुसार मुगल शासन की जन–शिक्षा के प्रति उदासीनता निन्दनीय अवश्य है पर एक प्रकार से यह पूर्णतः दोष न था।

मुगलकाल में प्रायः शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी, क्योंकि धार्मिक दृष्टि से शिक्षा का काम पुण्य का काम समझा जाता था। शिक्षण संस्थाओं का व्यय कुछ तो धनी एवं दानी चलाते थे और कुछ राज्य से प्राप्त धार्मिक अनुदान से पूरा किया जाता था। बड़े–बड़े मकतबों और मदरसों को राज्य की ओर से भूमि प्राप्त थी तथा भूमि से होने वाली आय मदरसों को चलाने में व्यय की जाती थी। यदाकदा छज्ञत्रों के अभिभावक नकद या वस्तु के रूप में भेंट देते थे। जहांगीर के समय एक नियम बन गया था कि उसकी संपत्ति का उपयोग मकतब और मदरसे चलाने में किया जाता था। होनहार छज्ञत्रों का छात्रवृति दी जाती थी जिससे उनके अध्ययन में कोई अड़चन नहीं आए। पढ़ाने एवं सहायता देने की दृष्टि से अमीर तथा गरीब छात्रों में भेद नहीं किया जाता था। अध्यापकों को नियमित रूप से वेतन नहीं दी जाती थी। समय–समय पर राज्य बड़े सामंतों, व्यापारियों, घनी लोगों तथा अभिभावकों से प्राप्त भेंट या पुरस्कार स्वरूप प्राप्त आर्थिक सहायता से उनका जीवनयापन होता था। अध्यापक और शिष्य के सम्बन्ध पिता–पुत्र के समान थे। छात्र, अध्यापकों से वात्सल्य प्राप्त करते थे और अध्यापक छात्रों लिए पूज्य और आदर के पात्र थे। समाज में भी अध्यापकों का बड़ा सम्मान था तथा मौलवी और मियाँ जी जो अध्यापक का कार्य करते थे, आध्यात्मिक और सांसारिक पथप्रदर्शक माने जाते थे।

मध्यकाल में बालक को शिक्षित करना और उसे एक सच्चा इंसान बनाना अध्यापक का दायित्व था। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब अध्यापकों ने मूल्यवान पुस्तकों की नकल करके उनकी प्रतियाँ गरीब छात्रों को पढ़ने

के लिए वितरित की थी। बदायूनी के अनुसार शेख मुइन अपने छात्रों से बड़ा स्नेह करते थे। उन्होंने पुस्तकों की प्रतियाँ तैयार करवाकर और उनकी जिल्द बनवाकर हजारों छात्रों को वितरित की थी। एक प्रकार से पुस्तकें देना उनके जीवन का मुख्य ध्येय बन गया था। एस एम जफर के अनुसार साधारणतया समाज में अध्यापकों का सम्मान होता था। छात्र उनके प्रति विनम्र और भक्तिपूर्ण होते थे। अध्यापक का सेवा करना तथा उनकी आज्ञा का पालन करना वे अपना कर्तव्य समझते थे। जिन मदरसों में छात्रावासों की व्यवस्था थी, वहाँ अध्यापक तथा छात्र एक साथ रहते थे। इस प्रकार एक दूसरे में निकटता आ जाती थी और घनिष्ठता और आत्मीयता में वृद्धि हो जाती थी। अध्यापक ऐसा कोई कार्य नहीं करते थे, जिससे उनके चरित्र और व्यवसाय पर विपरीत प्रभाव पड़े। समाज में उनका बहुत उच्च स्थान था। यद्यपि उनकी आय के स्रोत कम थे, किन्तु उनमें आत्मविश्वास था और वे सर्वत्र आदर के पात्र थे। तथापि अध्यापक तथा छात्र के स्नेहिल संबंधों के ह्रास के चिह्न भी दिखाई देते हैं।

मुगलकाल में शिक्षा की अवधि निश्चित नहीं थी। सामान्यतया प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने में चार–पाँच वर्ष का समय और उर्चा शक्षा प्राप्त करने में दस–बारह वर्ष लगते थे। किन्तु कुशाग्र बुद्धि के छात्र शीघ्र शिक्षा ग्रहण कर लेते थे और उन्हें अगली कक्षा में चढ़ा दिया जाता था। छात्र अगली कक्षा में जाने योग्य है या नहीं यह देखना अध्यापक का काम था। अध्यापक जब किसी छात्र को योग्य समझता था तो उसे अगली कक्षा में बैठा दिया जाता था। कला और विज्ञान की किसी विशेष शाखा की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्र भारत या विदेश के किसी प्रख्यात विद्वान के पास वर्षों तक पढ़ते थे। अध्ययनाधीन काल में फारस, इराक और अरब में पढ़ाना और वहाँ से उपाधि प्राप्त करना एक बड़ी प्रतिष्ठा की बात समझी जाती थी और समाज में उसका बड़ा सम्मान होता था। मकतब में शिक्षण विधि बड़ी सरल और मौखिक थी। एक अध्यापक के पास कम से कम दस और अधिक से अधिक 20 छात्र पढ़ते थे। अध्यापक ऊँची चौकी पर और छात्र उसके सामने अर्द्ध गोलाकार में जमीन पर बैठते थे। किन्तु बड़े–बड़े मकतबों में प्रायः बेंच की व्यवस्था होती थी। छात्र लकड़ी की तख्ती पर खड़िया मिट्टी की या सरकण्डे की कलम से लिखते थे, जिसे पाठ पूरा होने पर मिटाया जा सकता था। आजकल की तरह छपी हुई पुस्तकें या उत्तर पुस्तिकाएँ नहीं थी। पढ़ाई प्रातः और दोपहर के बाद दोनों समय होती थी। दिन के मध्य में भोजन तथा विश्राम के लिए छात्रों को अवकाश दिया जाता था।

अब्दुल हक से जानकारी मिलती है कि उसका मकान मदरसे से दो मील दूर था और उसे दिन में दो बार गर्मी और सर्दी का सामना करते हुए कुछ समय के लिए भोजन करने घर पर जाना पड़ता था। मौलवी बड़े और अधिक ज्ञान रखने वाले छात्रों से अध्यापन में और कक्षा में अनुशासन में सहयोग लेते थे। वे कक्षा नायक बनाये जाते थे और कक्षा में अनुशासन और व्यवस्था रखना उनका कार्य था। भारत के शिक्षाविदों ने कक्षा नायक की प्रणाली को इस दृष्टि से प्रारम्भ किया था कि जिससे एक साथ अलग–अलग स्तर के बहुत से छात्रों को पढ़ाने में कोई समस्या नहीं आये। इस व्यवस्था से छात्रों को बड़ा लाभ यह था कि अध्ययन के साथ–साथ अध्यापन का प्रशिक्षण भी उनको प्राप्त होता रहता था। इसके अतिरिक्त छात्रों में स्नेहपूर्ण सम्बन्ध

बनते थे तथा एक दूसरे के प्रति विश्वास और आदर की भावना का विकास होता था। छात्र की योग्यता का मूल्यांकन करने के लिए समय–समय पर शास्त्रार्थ तथा वाद–विवाद का आयोजन किया जाता था, जिसमें छज्ञत्र अपने ज्ञान तथा योग्यता का प्रदर्शन करते थे। किन्तु मीरात–ए–अहमदी नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि औरंगजेब के आदेश से गुजरात में बोहरा जाति के छात्रों की प्रति माह जाँच होती थी, जो परीक्षा का लघुरूप था। उस समय में किसी प्रतिष्ठित मदरसे में प्रख्यात विद्वान के सानिध्य में रहकर अध्ययन करना ही एक बहुत बड़ी योग्यता मानी जाती थी।

मुगलकाल में शिक्षा की समाप्ति के उपरान्त एक समारोह में उपाधियाँ देने का प्रचलन था। तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र की शिक्षा पूरी करने वाले छात्रों को "फाजिल" की उपाधि दी जाती थी। धर्मशास्त्र में विशेष योग्यता प्राप्त करने वाले छात्रों को "आमिल" की उपाधि प्रदान की जाती थी और साहित्य में विशेष योग्यता प्राप्त करने वाले छात्रों को "काबिल" की उपाधि से विभूषित किया जाता था। मुख्यता "फाजिल" "आमिल" तथा "काबिल" यह तीन उपाधियाँ ही वितरित की जाती थी। मुगलकाल में योग्य तथा चरित्रवान छात्रों को तमगे (मेडल) सनदे (प्रमाण–पत्र), पारितोषिक और छात्रवृत्ति देकर प्रोत्साहित किया जाता था। साथ ही कुशल स्नातकों को शासन, न्यायालय तथा सेना में उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। उस समय शिक्षा स्वयं के आत्मिक तथा बौद्धिक विकास के लिए प्राप्त की जाती थी।

संदर्भ :

1. डॉ.बी.के. सहाय, एजुकेशन एण्ड लरनिंग अण्डर दि ग्रेट मुगल्स, पृ. 3.
2. एस. एम. जफर, एजुकेशन इन मुस्लिम इण्डिया, पृ. 4.
3. डॉ. बी. पी. सक्सेना, मुगल सम्राट शाहजहाँ, पृ. 257.
4. अ. अकबरनामा, बेबेरिज, भाग 3, पृ. 107
5. एस. एम. जफर, एजुकेशन इन मुस्लिम इण्डिया, पृ. 28.
6. इ. पी. एल. रावत, भारतीय शिक्षा का इतिहास पृ. 55.
7. जौहरी एवं पाठक, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, पृ. 50.
8. अ. डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ. 94.
9. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ. 96.